P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-6* February- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

मध्यकालीन निर्गुण सन्त मलूकदास के दार्शनिक विचारों का अन्य समकालीन सन्तों से एक तुलनात्मक अध्ययन

रामनरेश सिंह
शोधार्थी,
इतिहास एवं संस्कृति विभाग,
डॉ0 बी0आर0ए0विश्वविद्यालय,
आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

सुगम आनन्द
प्रोफेसर,
इतिहास एवं संस्कृति विभाग,
डॉ0 बी0आर0ए0विश्वविद्यालय,
आगरा, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

संतों की दुनिया सहज, चैतन्य और प्रकाश की दुनिया है। ढोंग, दिखावा, छल, छद्म और अज्ञानता के विपरीत उन्होंने मानवीयता, संवेदनशीलता तथा जीवन्त संसार के निर्माण में अपनी सारी सामर्थ्य लगा दी। इसी संसार, यानी इहलोक को उन्होंने परलोक से अधिक महत्व दिया। इसे ही संवारने, संभालने में अपनी वाणी को परिष्कृत किया। शुद्ध आचरण ईश्वर को ही सच्ची आराधना व भक्ति माना। मध्यकालीन संत कबीर, रैदास, नानक, दादू की भांति संत मलूकदास भी आजीवन इसी पथ पर बढ़ते रहे। मानवीयता, अध्यात्म, हिन्दू–मुस्लिम एकात्मता का समर्थन के विरूद्ध संदेश देते रहे।

संत मलूकदास इन मध्यकालीन संत कवियों में अलग से देदीप्यमान नक्षत्र की भांति ध्यान आकर्षित करते हैं। उनकी विशिष्टिता इस बात में है कि भारतीय अध्यात्म के जो तीन प्रसिद्ध सूत्र हैं – बादरायण का ब्रह्म सूत्र, नारद का भक्ति सूत्र और पतंजलि का योग सूत्र–इन तीनों सूत्रों का मलूक की वाणी में, उनके दोहों, सखियों और पदों में संयोजन देखा जा सकता है। मनुष्य की प्राकृतिक ऊर्जा, अंतर्निहित परमात्माशक्ति–इनकी प्राप्ति के भौतिक जीवन का सुधार, यही महालक्ष्य है मलूक की वाणी का। अर्थात् मानव के जीवन को सर्वांगरूप में अनुभूतिपूर्ण बनना और सुधारना। एक बेहतर मानवीयता को धरती पर सुलभ बनाना।

संत मलूकदास भी अन्य मध्यकालीन संतों की भांति दुःखी दीन, दरिद्र, भूखे–प्यासे को इतना अधिक महत्व देते हैं कि इनकी सहायता को ही वह सच्ची भक्ति और धर्म मानते हैं। समाज में व्याप्त कुप्रथाओं आडम्बरों तथा निर्गुण, सगुण के विरोधाभास का यथार्थपूर्ण ढंग से तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास इस शोध पत्र में किया गया है।

मुख्य शब्द : कबीर, रैदास, नानक, दादू, मलूक, निर्गुण ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, माया, अहंकार, सुमिरन।

प्रस्तावना

संत कवि मलूकदास ने भी अन्य निर्गुण संतों की भांति ही सीधे–सादे शब्दों में परब्रहा की सत्ता एवं पूंजी सौंप दी है। उन्होंने धर्म को शास्त्रों से निकालकर जीवन–प्रवाह के साथ जोड़ दिया। पाखंड, आडम्बर एवं भेद–भाव से ग्रस्त व्यवहारिक जीवन की बाधाओं को, अपनी सर्वग्राही, मानवीय, सर्वसुलभ अध्यात्म–अनुभूति की प्रवाही चेतना से दूर करने का प्रयास किया। वह सरल दार्शनिक थे क्योंकि वह मूल प्रकृति से, मौलिक रूप में जुड़े हुए थे। संत मलूक का परब्रहा एक है तथा सबके लिए सहज तथा सुलभ है। वह नाम, रूप, जाति, वर्ण से परे है। शब्द रूप है। संत मलूकदास का मत हैः–

शब्द अनाहत होत जहां ते, तहां ब्रह्म कर बासा।
गगन मंडल में करत किलोलें, परम ज्योति परगासा।।[1]

संत मलूक के लिए जहां अनहत् नाद व्याप्त है, वहां ब्रह्म का निवास है। संपूर्ण गगन मंडल में उसी की लीला व्याप्त है। वही परम ज्योति चैतन्य प्रकाश बन सर्वत्र विद्यमान है।

मलूकदास सगुण और निर्गुण को भिन्न–भिन्न नहीं मानते। उनके विचार में इन दोनों में कोई भेद नहीं है। जो निर्गुण है वही सगुणरूप में अवतरित होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. मध्यकालीन निर्गुण सन्त मलूकदास के व्यक्तित्व तथा शिक्षाओं का अध्ययन करना।
2. सन्त मलूक की शिक्षाओं में आध्यात्मिक चिन्तन का अध्ययन करना।
3. सन्त मलूक के सामाजिक समन्वय के प्रयासों, अपने उपदेशों में जाति प्रथा, मूर्ति पूजा तथा धर्मगत विभेदों के विरोध का अन्य मध्यकालीन सन्तों से तुलनात्मक अध्ययन करना।

साहित्यावलोकन

''मलूकदास जी की बानी'' ''जीवन चरित सहित'' (1971) प्रकाशक, वेलवीडियर प्रिटिंग प्रेस, इलाहाबाद को आधार मानते हुये सन्त मलूकदास जी की वाणियों में उनके

सामाजिक परिवर्तन के दर्शन की व्यापकता तथा समन्वयक दृष्टिकोण की जानकारी मिलती है। साथ ही मौलिक शोध को करने में भी सहायता प्राप्त हुई है।

शहाबुद्दीन ईराकी कृत ग्रन्थ ''मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन'', सुरभारती प्रकाशन, 1973 वाराणसी, में भक्ति विचारधारा और आन्दोलन की विभिन्न धारणाओं एवं समाज पर उनके प्रभावों का एक तथ्यपरक विश्लेषण है जो भूमिका एवं उपसंहार के अतरिक्त बारह अध्यायों में विभक्त है। लेखक ने विभिन्न सन्तों के जीवन दर्शन को विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार यह सन्त समाज के निचले वर्गों से सम्बन्ध रखते थे तथा जन्म से हिन्दू या मुस्लिम थे। वे न तो हिन्दूवाद के समर्थक थे और नहीं इस्लाम के बल्कि समूची व्यवस्था तथा संस्थागत धर्म के सभी नियमों को स्वीकार पक्ष पर बल दिया। परिणामस्वरूप उनके विरोध का स्वर धार्मिक मामलों से लेकर सामाजिक, आर्थिक तथा समकालीन राजनीतिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था तक था। लेखक ने तत्कालीन समाज में उत्पन्न विभिन्न प्रवृत्तियों पर भी प्रकाश डाला है। जैसे सर्वव्यापी ईश्वर की परिकल्पना जिसने निर्गुण अथवा निराकार ब्रह्म को रेखांकित किया।

पुरुषोत्तम चतुर्वेदी लिखित पुस्तक ''सन्त परम्परा'', प्रयाग, 1931 में प्रकाशित एक ग्रन्थ है जो सगुण तथा निर्गुण सन्त परम्पराओं के विशद् स्वरूप तथा दर्शन को प्रस्तुत करता है। भारत में संभवतः पहली बार इतने बड़े स्तर पर अन्य किसी विद्वान ने कार्य नहीं किया है। पुरुषोत्तम चतुर्वेदी के इस ग्रन्थ में द्वितीयक स्रोतों के साथ–साथ समकालीन फारसी साहित्य का सन्दर्भों में अभाव दिखाई देता है।

ताराचन्द कृत : ''उत्तर भारत की सन्त परम्परा'', 1979, नेशनल बुक कम्पनी, दिल्ली। पुस्तक में सन्तों के जीवन तथा दर्शन पर एक विस्तृत व्याख्या पढ़ने को मिलती है। डॉ0 ताराचन्द ने अपने निष्कर्षों में एक सन्तुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। पुस्तक में साहित्यिक समालोचना का अभाव दिखाई देता है।

परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, 1986, लोक भारती प्रकाशन, प्रयाग। इस पुस्तक में उत्तर भारत के मध्यकालीन निर्गुण सन्तों, उनके जीवन, कृतियों तथा उपदेशों पर विस्तृत लेखन किया गया है। यद्यपि सगुण परम्परा के सन्तों का इस ग्रन्थ में कोई परिचय नहीं है। इस ग्रन्थ में प्राथमिक स्रोतों का उपयोग कम किया गया है।

विषय विस्तार

ब्रह्म के दो रूप माने जाते हैं, एक निर्गुण दूसरा सगुण। वास्तव में निराकार निर्विकार गुण रहित ब्रह्म निर्गुण कहलाता है। इसके विपरीत साकार गुण सम्पन्न ब्रह्म सगुण कहलाता है। संक्षेप में निर्गुण सगुण शब्दों का यही रहस्य और अर्थ है। साधारणतः लोगों का कथन और विश्वास है कि सगुण साकार ब्रह्म की उपासना की जाती है और निर्गुण निराकार ब्रह्म का केवल चिन्तन और अनुभव। बहुत अंश तक कथन युक्ति संगत भी है। जिसका कोई रूप नहीं, आकार नहीं उसकी उपासना, वन्दना कैसी, किस रूप में। उसका तो केवल चिन्तन ही सम्भव हैं। भक्ति के क्षेत्र में ब्रह्म का सगुण रूप ही मान्य है। कारण यह कि निर्गुण ब्रह्म में सगुण की अपेक्षा चित्त की एकाग्रता, मनकी स्थिरता सम्भव नहीं होती। डॉ0 हजारी प्रसाद का मत इसके विपरीत है। वे निर्गुण ब्रह्म की उपासना को भी सम्भव बताते हैं। उन्होंने पुष्टि के लिए कहा जो वाणी और मन के गोचर में है ही नहीं उसकी उपासना कैसे हो सकती है। जो वस्तु वाणी और मन के परे है, अर्थात् जिस तक न तो वाणी पहुंच पाती है और न मन, उसका अनुभव भी तो सम्भव नहीं है। उसको जान लेना भी तो सम्भव नहीं दिखता। फिर यदि यह सम्भव है तो उपासना क्यों सम्भव नहीं है।[2] वास्तव में निर्गुण सगुण में कोई भेद नहीं है। भेद केवल इतना है कि सगुण उपासना बाहर की वस्तु है और निर्गुण उपासना अन्दर की। निर्गुणोपासक उसी को अलख निरंजन बताते हैं और सगुणोपासक उसी का साक्षात् दर्शन करता है, उससे मिलन और बातें करता है। दोनों ही निर्गुण और सगुण एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों तत्व अलग–अलग अपूर्ण हैं और एक ही में मिलकर पूर्ण हो जाते हैं।

गीता में अर्जुन के प्रश्न करने पर कृष्ण ने निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की उपासना को समान मानते हुये दोनों में एकत्व एवं अभिन्नत्व दर्शाया हैं। अर्जुन के प्रश्न करने पर सगुण उपासना का पोषण करते हुये कृष्ण स्पष्ट घोषणा करते हैं कि मेरे से मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन ध्यान में लगे हुये जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुये मुझे सगुण रूप परमेश्वर को मानते हैं वे मुझे योगियों में भी अति उत्तम योगी मान्य हैं। अर्थात् उनको मैं सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ।[3] पुनः श्री कृष्ण निर्गुण रूप की उपासना की भी प्रतिष्ठा करते हुये कहते हैं कि जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को अच्छी प्रकार वश में करके मन बुद्धि से परे सर्वव्यापी अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहने वाले नित्य अचल निराकार अविनाशी सच्चिदानन्द धन ब्रह्म को निरन्तर एकी भाव से ध्यान करते हुये उपासना में तत्पर रहता है। वह सम्पूर्ण अवस्थाओं में सक्रिय रहता है ऐसे ही समान भाव वाले योगी मुझे ही प्राप्त होते हैं।[4] इस प्रकार गीता में भी निर्गुण और सगुण की एक रूपता का दर्शन पाते हैं।

तुलसीदास ने भी निर्गुण सगुण में एकता बतायी है। इनका कहना है कि सगुन निर्गुन में कोई भेद नहीं है। जो निर्गुण अरूप अलख और अजन्मा है वही भक्तों के प्रेम वश ही सगुण हो जाता है।[5] इसी प्रकार उन्होंने स्पष्ट कहा कि राम अगुन अलेप और समान है। परन्तु प्रेम वश उन्हें सगुण रूप होना पड़ा।[6] प्रकृति वर्णन प्रस्तुत करते हुये एक स्थान पर तुलसी दास ने निर्गुण सगुण को वैसे ही परस्पर सम्बन्धित बताया है जैसे सर (तालाब) कमलों से युक्त शोभा पा रहा हो।[7] निर्गुण सगुण का विवेचन करते हुये तुलसीदास जी कहते हैं कि भगवन आप सगुण भी है और निर्गुण भी। आप सुन्दर गुणों के मन्दिर हैं। अर्थात् श्री रामादि अवतारों में भक्त वात्सल्यादि गुण प्रत्यक्ष प्रगट होने से सगुण और सर्वव्यापी होकर भी सबसे विलग रहने के कारण निर्गुण तथा दया दाक्षिरायादि अनन्त कल्याण गुणों के होने से गुण मन्दिर हैं। भ्रम रूपी अन्धकार के लिये आप प्रबल तेजस्वी सूर्य हैं, काम, क्रोध मद रूपी मतवाले हाथियों के लिये सिंह हैं। वही आप भक्तों के (मेरे) चित्त रूपी वन में निवास करें।[8] तुलसी दास राम के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को मानते हुये उन्हें नमस्कार करते हैं। तुलसी दास स्पष्ट कहते हैं कि हे निर्गुण और सगुण रूप वाले विषम (मच्छकच्छादि) और समरूप वाले एवं ज्ञानवाणी और इन्द्रियों की पहुंच से परे, रूप रहित, निर्मल, सम्पूर्ण, अनिन्न, अपार तथा पृथ्वी के मार को नष्ट करने वाले श्रीराम चन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूं।[9] वास्तव में भक्त तुलसी निर्गुण सगुण में कोई भेद नहीं मानते। दोनों में उनकी आस्था और विश्वास है। इसी नाते निर्गुण सगुण दोनों रूपों की वन्दना तुलसी ने अनेक स्थानों पर की है।[10]

सन्त कबीर भी निर्गुण सगुण दोनों रूपों में विश्वास प्रगट करते हैं। ये अपने ब्रह्म को दोनों से परे मानते हैं। कबीर कहते हैं कि मैं सगुण की सेवा करता हूं और निर्गुण का ज्ञान। हमारा ध्यान निर्गुण सगुण के परे हैं।[11] इसी प्रकार कबीर निर्गुण को बीज और सगुण को फल फूल बताकर दोनों में पारस्परिक सम्बन्ध दर्शाते हैं।

आप सभी जगह निर्गुण सगुण की ही व्यापकता मानते हैं। फिर भी यह तो निश्चित ही है कि आप निर्गुणोपासना के ही पोषक हैं। आपने दोनों के भेद को मिटाया है।[12]

सन्त मलूक भी भगवान कृष्ण और राम को अवतारी तो मानते हैं। लेकिन दोनों को निर्गुण रूप में। सगुण में ही निर्गुण छुपा है। अतः सन्त मलूक दास ने निर्गुण–सगुण के विवाद का भी समाधान कर दिया है। अतः संत मलूक की वाणी में ब्रह्म द्वैत होते हुए भी अद्वैत है।

''निर्गुण ब्रह्म सगुण होइ आवै।
असुर मारि करि भक्ति देखावै।।[13]

ईश्वर सर्वव्यापी है। वेदों, पुराणों तथा अन्य धर्म ग्रन्थों की यही मान्यता रही है। ईशवास्योपनिषद में भी सर्वत्र भगवत दृष्टि का उपदेश दिया गया है। जगत में जो कुछ स्थावर जंगम है वह सब ईश्वर द्वारा आच्छादित है।[14] मुंडकोपनिषद में भी ब्रह्म की व्यापकता मानी गयी है। ब्रह्म ही आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दांई बांई ओर है तथा ब्रह्म ही नीचे ऊपर फैला है। यह सारा जगत सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है।[15]

गीता में भी श्री कृष्ण कहते हैं कि मैं भूतों में स्वभाव से ही व्यापक हूं, न कोई अप्रिय हैं और न प्रिय।[16] कृष्ण अपनी व्यापकता के विषय में पुनः कहते हैं कि जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्म रूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासदेव के ही अन्तर्गत देखता है उसके लिये मैं अवश्य नहीं हूँ।[17] मानस में तुलसी संसार को राम मय ही देखते हैं।[18]

कबीरदास अविनाशी ब्रह्म को घट घट में बसने वाला बताते हैं। कबीर के मतानुसार वह सर्वज्ञ, सर्वरूप जग में समाया हुआ है। ब्रह्म की सर्वत्र छाया है।[19] ब्रह्म उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम स्वर्ग और पाताल सभी स्थानों में व्याप्त है। कोई भी स्थान गोपाल से रिक्त नहीं हैं।[20] कबीरदास जी कहते हैं कि विरहिन अपने प्रिय को ढूंढ़ने के लिए सर्वत्र भटकती रहती है। उसे इस सत्य का ज्ञान नहीं है कि उसका प्रिय उसी के घट में विद्यमान है।[21]

सन्त मलूकदास हजूर को दूर नहीं बताते। उनके शब्दों में वह हमा–जा और मरपुर है। वह जाहिरा जहान और जहूर परनूर है।[22]

जीव एवं जगत की अवधारणा सन्त मलूकदास की वाणी में बहुत स्पष्ट रूप में व्यक्त हुई है जिसे विभिन्न दोहों, पदों में लक्ष्य किया जा सकता है। सन्त मलूकदास का मानना था कि ब्रह्म हर जीव में विद्यमान है। आत्मरूप में परमात्मा सब कहीं रमा हुआ है। उसे खोजने दूर कहीं नहीं जाना पड़ता।

एक ही अक्षर ते सकल, प्रकृति पुरुष विस्तार।
कह मलूक वह विधि जगत, नामहि है विस्तार।।
कारण जग को ब्रह्म है, और न कोउ आहि।
यह प्रपंच सब ब्रह्म है, जानहु निस्चै आहि।।[22]

निष्कर्ष

मध्यकालीन संतों का सबसे बड़ा आग्रह और अवदान इस भौतिक जगत को जानने, समझने और सुधारने का रहा। इस धरती पर अनेक तरह की पीड़ाएं हैं जिनसे मनुष्य–जीवन बिंधा हुआ है। संतों के आग्रह भूखे को भोजन, प्यासे को जल पिलाने के रहे हैं तो पेड़–पौधे–पक्षी–पशु आदि तक को कष्ट न पहुंचाने के भी रहे हैं। संत प्राणीमात्र की पीड़ा के लिए कुछ अधिक सजग और संवेदनशील लगते हैं। संभवतः इसलिए कि वे सभी समाज के निम्न, उपेक्षित, उत्पीड़न वर्ग से आये थे। उनकी वाणियों में वेद–कालीन प्रकृत–चेतना और अनुभूति की सहज सरल व्याप्ति मनमोहक है तो मानवीय समता एवं सह–अस्तित्व की भूमि पर दृढ़ता से खड़े होने के कारण। वर्तमान युग के पर्यावरणविद् इस सत्य से सहमत हैं।

इन संतों में मलूकदास अलग से ही एक देदीप्यमान नक्षत्र की भांति ध्यान आकर्षित करते हैं। प्रकृति के प्रति उनकी आत्मिक सम्बद्धता और चेतन–सक्रिय वैचारिकता का उदाहरण उनके निम्न वचनों में दिखाई पड़ता हैः–

हरी डार न तोड़िये, लागे छूरा बान,
दास मलूका यों कहै, अपना–सा जिव जान।[23]

पेड़–पौधे, वनस्पति आदि में चैतन्य की व्याप्ति और प्राण के सहज बोध के कारण वह कहते हैं कि पेड़–पौधे की हरी टहनी को नहीं तोड़ें। उसके टूटने से ऐसे लगता है जैसे देह में छुरा या बान घुप गया हो। ऐसी ही पीड़ा पेड़–पौधों को होती है, एक टहनी मात्र के टूटने से। इनमें भी हमारे जैसा ही जीव है। सन्त मलूकदास का कहना है, अपना–सा दुख सबका जानै ताहि मिलै अविनाशी। हृदय की कोमलता मनुष्य होने की शर्त है। इस सहज कोमलता या संवेदना को खो देने से मनुष्य अपने मनुष्य होने को झुठला रहा है। अपनी मनुष्यता को सिद्ध करने के लिए उसे अपनी संवेदनाओं को मनुष्यों तक ही नहीं, मनुष्येतर प्राणियों–पशु–पक्षी पौधा और पाहन (पत्थर) तक विकसित करना चाहिए। ऐसा करना कोई अतिरिक्त कार्य नहीं। एहसान नहीं। अपने जीव और योनि–धर्म को सिद्ध सार्थक करने के लिए अनिवार्य है। यही भक्ति भी है। इससे इतर कोई भक्ति नहीं। सन्त मलूकदास दीन दुखियों एवं असहायों की सेवा को सर्वोपरि मानते थे।

भूखेहिं टूक प्यासेहिं पानी।
एहि भगति हरि के मन मानी।[24]

संत मलूकदास के शब्दों में भक्ति की उक्त सरल परिभाषा यदि समझ में नहीं आए तो भक्ति के नाम पर कई तरह के मजहबी–सांप्रदायिक (सम्प्रदायवादी) प्रपंच या आडम्बर को ही भक्ति मानने के आग्रह मन में समाये हुए हैं, यह सबसे बड़ी विडम्बना ही है। आज अपने सहज मनुष्य धर्म को छोड़कर 'धर्म' और 'परमात्मा' की बड़ी–बड़ी बातें मूर्खतापूर्ण भटकन के सिवा और कुछ नहीं। आज विभिन्न सम्प्रदायों के मुल्ला–पंडित–पादरी जो मानक के लिए 'धर्म' एवं 'परमात्मा' के नाम पर पीड़ाएं बो रहे हैं उनके लिए सन्त मलूकदास के ये शब्द सही मार्ग दिखाने वाले हैं कि वही पीर या संत है, जो दूसरों की पीड़ा को जानता है और दूर करता है।

अन्य संतों–कबीर, दादू, नानकदेव, रैदास आदि की भांति मलूकदास भी देह एवं भौतिक जगत के परे और भीतर आत्मा, परम आत्मा–चेतना के 'जागरण' को ही सबसे बड़ा मानव–गुण मानते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मलूकदास जी की बानी, जीवन चरित्र सहित, बेडवीडियर प्रेस, इलाहबाद।
2. बल्देव वंशी, संत मलूक ग्रन्थावली, 2008, नई दिल्ली।
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, 2005, मलिक एण्ड कम्पनी, दिल्ली।
4. पीताम्बर दत्त, बड़थवाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, संवत् 2007, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ।
5. बलदेव वंशी, संत कवि मलूकदास, 2006, इन्द्रप्रस्थ इन्टरनेशनल, नई दिल्ली।
6. शहाबुद्दीन ईराकी, मध्यकालीन भारत में भक्ति आन्दोलन, 2012, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

अंत टिप्पणी

1. *बलदेव वंशी, संत कवि मलूकदास, इन्द्रप्रस्थ इंटर नेशनल, नई दिल्ली–2006, पृ0 7*
2. *डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ0 111*
3. *श्रीमद्भगवतगीता – गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 214 अध्याय 12/2*
4. *श्रीमद्भगवतगीता, अध्याय 12/3, 4*
5. *श्रीराम चरित मानस गुटका – गीता प्रेस गोरखपुर, पृ0 101*
6. *वहीं, पृ0 349*
7. *वही, किष्किन्ध्याकांड, पृ0 456*
8. *सगुन अगुन गुन मंदिर सुन्दर भ्रमतम प्रबल प्रताप दिवाकर। काम क्रोध मद गज पंचानन बसहु निरंतर जन मन कानन।। वही, पृ0 234–235*
9. *निर्गुन सगुन विषम समरूपं, ज्ञान गिरा गो तोतमरूपं। अमलमखिल मनवधमपार, नामि राम भजन महि–मारं।। वही, अरण्य कांड, पृ0 349*
10. *(अ) जयराम रूप अनूप, निर्गुन सगुन गुन प्रेरक उही। दससीस बाहु खंडेन चंड सर मंडन मही।। वही, पृ0 432*
    (ब) जय सगुन निर्गुन रूप अनूप भूप सिरोमने। दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल मुज बल हने।। वही, पृ0 601
11. *डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर (कबीर वाणी), पृ0 317*
12. *वहीं, पृ0 280*
13. *त्रिलोकी नारायण दीक्षित, संत कवि मलूकदास, पृ0 35*
14. *ईशवास्योपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 14/1*
15. *मुंडकोपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 83/11*
16. *श्रीमदभगवतगीता, गीता प्रेस, गोरखपुर अध्याय, 9/21*
17. *वही, गीता प्रेस, गोरखपुर अध्याय, 6/30*
18. *रामचरितमानस गुटका, गीता प्रेस गोरखपुर पृ0 39*
19. *बीजक – वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, पृ0 42/27*
20. *वही, पृ0 47/42*
21. *वही, पृ0 15/4*
22. *मलूकदासजी की बानी, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, पृ0 20/11*
23. *बलदेव वंशी, पद संत मलूक ग्रन्थावली, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ0 113*
24. *संत कवि मलूकदास, पूर्वोद्धत, पृ0 29*
25. *मलूकदास की बानी, वेलवीडियर प्रेस, इलाहाबाद, पृ0 4*